International Journal of Sanskrit Research 2024; 10(1): 47-49

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2024; 10(1): 47-49
© 2024 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 01-11-2023
Accepted: 05-12-2023

प्रिया शर्मा

शोधच्छात्रा, ज्योतिषविभागः

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय

संस्कृत विश्वविद्यालयः, नवदेहली,

भारत

Corresponding Author:

प्रिया शर्मा

शोधच्छात्रा, ज्योतिषविभागः

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय

संस्कृत विश्वविद्यालयः, नवदेहली,

भारत

ज्योतिष एवं आयुर्वेद में रोग परिज्ञान के सिद्धान्त

प्रिया शर्मा

DOI: https://www.doi.org/10.22271/23947519.2024.v10.i1a.2584

प्रस्तावना

भारतीय शास्त्रीय विद्यायें ''धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष'' चतुर्विध पुरुषार्थ के लिए प्रवृत्त होती हैं। इस पुरुषार्थ चतुष्टय का ''आरोग्य'' मूल कारण है। रोग उस श्रेय ''पुरुषार्थ चतुष्टय'' तथा जीवन का हरण करने वाले हैं। जैसे कि मुनि चरक ने चरक संहिता के दीर्घञ्जीविताध्याय में कहा है-

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च[1] ॥

आयुर्वेद शास्त्र रोग के उत्पन्न होने के बाद उसका निदान करता है, जबकि ज्योतिषशास्त्ररोग के उत्पन्न होने से पूर्व रोग की सम्भावना का विचार करता है। अतः ज्योतिषशास्त्र द्वारा रोग से पूर्व रोग की सम्भावना होने पर उस रोग का उपाय करके रोग से सुरक्षा की जा सकती है।

आयुर्वेदशास्त्र में प्राणियों के स्वस्थ और रोगी होने के कारण लक्षण और औषध का विस्तार से विवेचन किया गया हैं। मनुष्य के स्वस्थ और अस्वस्थ होने के क्या कारण लक्षण और औषध हैं ? आयुर्वेदशास्त्र में यह त्रिसूत्र कहलाता है। चरकसंहिता के सूत्रस्थान में कहा गया है-

हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम्।
त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः[2] ॥

आयुर्वेदशास्त्र में हितभुक् ''हितकारी भोजन'' मितभुक् '' संयमित भोजन और ऋतुभुक् ऋतु के अनुसार भोजन स्वास्थ्यकारक कहा गया है। वस्तुतः हमारा शरीर यज्ञायतन है। हम इस यज्ञायतन में जिस प्रकार के अन्न की आहूति देते हैं, वह अन्न प्रसाद और मल दो भागों में विभक्त होता है।

प्रसाद भाग से रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र ये सप्तधातुयें पुष्ट होती हैं और मल भाग पुरीष-मूत्र-स्वेद के रूप में शरीर से पृथक् होता है। इस प्रकार सुपथ्य से शरीर पुष्ट होता है और उसमें रोगरोधकक्षमता (इम्यूनिटि) की वृद्धि होती है। जबकि जंकफूड आदि से रस रक्त आदि की पुष्टि न होने के कारण तथा असामयिक दिनचर्या से अनेक प्रकार के रोगों के संक्रमण होने की सम्भावना होती है।

अतः आयुर्वेदशास्त्र में कहा गया है- ''मिथ्याहारविहाराभ्यां रोगोत्पत्तिः सञ्जायते'' मिथ्या आहार और विहार से रोग की उत्पति होती है, किन्तु कभी-कभी ऐसा देखा गया है, कि संयमित आहार और दिनचर्या होने पर भी रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसका कारण कर्म प्रकोप कहा गया है। ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थ प्रश्नमार्ग में कहा गया है-

जन्मान्तर कृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।
तच्छान्तिरोषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः[3] ॥

जन्मजन्मान्तर में किया गया पाप व्याधि के रूप में पैदा होता है, उसकी शान्ति औषधि, दान, जप, होम और पूजा आदि के अनुष्ठान से होती है। राजा वीरसिंह तोमर द्वारा रचित वीरसिंहावलोक नामक ग्रन्थ में ज्योतिष, आयुर्वेद और धर्मशास्त्र तीनों दृष्टियों से रोग का विचार किया गया है, उसमें कहा गया है, कि-

कर्मप्रकोपेण कदाचिदेके दोषप्रकोपेण भवन्ति चान्ये।
तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजा कायमनो विकाराः[4] ॥

कभी जन्मजन्मान्तरों में किये गये पापकर्म के प्रकोप से कभी वात, पित्त और कफ दोषों के प्रकुपित होने से और कभी-कभी कर्म और दोष इन दोनों के प्रकोप से शारीरिक और मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है।

आचार्य चरक के अनुसार शारीरिक रोग वात, पित्त और कफ के प्रकोप से तथा मानसिक रोग रजोगण और तमोगुण के प्रकोप से उत्पन्न होते हैं-

वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शरीरो दोषसंग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टः रजश्चतम एव च[5] ।

शरीरिक रोगों का दैवव्ययाश्रय और युक्ति व्यपाश्रय से तथा मानसिक रोगों का ज्ञान-विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि से प्रशमन होता है-

प्रशामयत्यौषधैः पूर्वो दैवयुक्तिव्ययाश्रयैः।
मानसो ज्ञानविज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधाभिः[6] ॥

आचार्य सुश्रुत के अनुसार ''दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्'' दोष, धातु एवं मल शरीर की रोगारोग्यता के मूल कारण हैं। वात, पित्त, कफ इन तीनों प्रकृतियों रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र इन सप्तधातुओं और पुरीष, मूत्र, स्वेद इन मलों की साम्यावस्था या प्रकृतावस्था में शरीर स्वस्थ रहता है तथा इनकी विषमावस्था में शरीर के दूषित होने से उससे सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं-

वायुः पित्तं कफो दोषा धातवश्च मला मताः।
शरीरदूषणाद्दोषा धातवो देहधारणात्॥
वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः[7] ॥

ज्योतिषशास्त्र में सूर्य की पित्त, चन्द्र की वात और कफ, मंगल की पित्त, बुध की वात-पित-कफ, गुरु की कफ, शुक्र की कफ-वात और शनि की वात प्रकृति कही गयी है, प्रश्नमार्ग में कहा गया है-

पित्तं वातकफौ पित्तं वातपित्तकफाः कफः।
कफवातौ च वातश्च सूर्यादीनां प्रकीर्तिताः[8] ॥

इसी प्रकार ग्रहों की सप्तधातुयें कही गयी हैं। सूर्य की अस्थि, चन्द्र की रस, मंगल की मज्जा, बुध की त्वचा, गुरु की वसा, शुक्र की शुक्र, शनि की स्नायु तथा रवि की अस्थि धातु कही गयी है-

स्नाय्वस्थ्यसृक् त्वगथ शुक्रवसे च मज्जा।
मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमाः[9] ॥

ज्योतिषशास्त्र में कालस्वरूप पुरुष के शरीर को मस्तक से लेकर पैर तक मेषादि द्वादश राशियों में विभक्त किया गया है। कालस्वरूप पुरुष का मेष-मस्तक, वृष-मुख, मिथुन-भुजा, कर्क-हृदय, सिंह-पेट, कन्या-कटिप्रदेश, तुला-बस्ति, वृश्चिक-गुप्ताङ्ग, धनु-उरू, मकर-घुटना, कुम्भ-जङ्घा तथा मीन पैर कहे गये हैं। लघुजातक में कहा गया है-

शीर्षमुखबाहूहृदयोदराणि कटिबस्तिगुह्यसंज्ञानि।
उरू जानू जङ्घे चरणाविति राश्योऽजाद्याः[10] ॥

इस प्रकार मेषादि द्वादश राशियों में अङ्गविभाग के अनुसार शुभग्रह से युक्त राशि से सम्बन्धित अङ्ग उपद्रवयुक्त अर्थात् रोगयुक्त होता है। लघुजातक में ही कहा गया है-

कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत् प्रसवकाले।
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च[11] ॥

रोग के परिज्ञान के विषय में प्रश्नमार्ग में कहा गया है, कि जन्मलग्न से अष्टम राशि अथवा अष्टम स्थान को देखने वाला ग्रह काल पुरुष के जिस अङ्ग की राशि में स्थित हो, जातक के शरीर के उस अङ्ग में रोग होता है-

कालाङ्गेष्वष्टमो राशिर्ग्रहो वाष्टमवीक्षकः।
जन्मकाले स्थितो यत्र तत्राङ्गे तद्गदोद्भवः[12] ॥

इसी प्रकार सूर्यादिग्रहों के जो वात पित्त कफादि दोष कहे गये हैं, उनमें उस-उस ग्रह के रोग कारक होने पर उस दोष से सम्बन्धित रोग कहना चाहिए-

यस्य ग्रहस्य यो दोषः पित्तादिष्विह कीर्तितः।
तेन रोगे तु वक्तव्ये वाच्यस्तद्दोषजो गदः[13] ॥

इसी प्रकार से ज्योतिष शास्त्र में द्रेष्काण आदि के द्वारा विभिन्न प्रकार से विस्तार से रोग परिज्ञान के सिद्धान्त दिये गये हैं।

इसके अतिरिक्त बृहज्जातक, बृहत्पाराशरहोराशास्त्र आदि होराशास्त्र के प्रसिद्धग्रन्थों में प्रतिपादित पापग्रहों से युत एवं दृष्ट विविध योगों के आधार पर भी पूर्व जन्म में किये गये पापकर्म के दुष्ट प्रभाव से उत्पन्न रोगों के भेदों की जानकारी करनी चाहिए[14]।

इस प्रकार आयुर्वेद के शास्त्र वात, पित्त और कफ की विषमता को रोग का कारण तथा ज्योतिष शास्त्र जन्मान्तर में किये गये कर्म के प्रकोप को रोग का कारण मानता है। अतः आयुर्वेद शास्त्र द्वारा वात, पित्त और कफ को साम्यावस्था में लाकर युक्तिव्यपाश्रय से रोग का निदान किया जाता है और ज्योतिषशास्त्र द्वारा कर्म प्रकोप की जानकारी करके, जिस ग्रह के प्रकोप से रोग की सम्भावना होती हैं, उसकी दैवव्यपाश्रय से शान्ति का उपाय करके रोग का प्रशमन किया जाता है।

संदर्भ सूची

1. चरकसंहिता प्रथमदीर्घञ्जीविताध्याय श्लो.सं.१५
2. तत्रैव सूत्रस्थानम्, अध्याय १, श्लो.सं.२३
3. प्रश्नमार्ग, अध्याय १३, श्लो.सं.२९
4. वीरसिंहावलोक, ज्वराधिकार, श्लो.सं.१९
5. चरकसंहिता, सूत्रस्थानम्, श्लो.सं.५६
6. चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, श्लो.सं.५७
7. सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय १५, सूत्र ३
8. प्रश्नमार्ग, अध्याय ११, श्लो.सं.४
9. बृहज्जातकम्, ग्रहयोनिप्रभेदाध्यायः, श्लो.सं.११ उ.अ.
10. लघुजातकम्, राशिप्रभेदाध्याय श्लो.सं.४
11. लघुजातकम्, राशिप्रभेदाध्याय श्लो.सं.५
12. प्रश्नमार्ग, अध्याय११, श्लो.सं.०५
13. प्रश्नमार्ग, अध्याय१२, श्लो.सं.१९
14. पापालोकितयोराद्यैर्योगैर्होरादिषूदितैः।
    अपि ज्ञेया रुजां भेदाः प्राग्जन्मदुरितोद्भवाः॥
    -प्रश्नमार्ग १२/३०